B.M.A. College Baheri Darbhanga (LNMU)
B.A. (Hons) Part-I Paper-II

1
6-10-2020

Dr. S.K. Singh
Deptt of Economics

भारतीय अर्थव्यवस्था में कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्व,

(IMPORTANCE OF COTTAGE AND SMALL SCALE INDUSTRIES IN INDIAN ECONOMY)

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था में जहाँ पूंजी का अभाव, गरीबी और बेरोजगारी का साम्राज्य है वहाँ कुटीर एवं लघु उद्योग आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सभी पहलुओं से औद्योगिक विकास की आधारशिला है। लघु उद्योगों के महत्व के बारे में कहा जाता है, "लघु उद्योग भारत की समस्याओं और उसके भावी विकास की कुंजी है जिसके द्वारा उसके विशाल अविदोहित साधनों के विदोहन तथा लाखों व्यक्तियों की उत्पादन क्षमता का प्रयोग किया जा सकता है।

लघु उद्योगों में ही आज की अनेक ज्वलंत समस्याओं का समाधान निहित है" गांधी जी के अनुसार, भारत का मोक्ष उसके कुटीर धन्धों में निहित है। मोरारजी देसाई के अनुसार, "ऐसे उद्योगों से ग्रामीण लोगों को जो अधिकांश समय बेरोजगार रहते हैं, पूर्ण अथवा अंशकालिक रोजगार प्राप्त होता है।"

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व निम्न तथ्यों से समझा जा सकता है:

1. रोजगार में वृद्धि - भारत में जनसंख्या की अधिकता के कारण बेरोजगारी की समस्या व्यापक रूप से पाई जाती है। लघु एवं कुटीर उद्योग श्रम प्रधान होते हैं, अतः इन उद्योगों द्वारा कम पूंजी के विनियोग से भी रोजगार में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है।

2. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुरूप - भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 54.6 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है लेकिन कृषकों को वर्षपर्यन्त कार्य नहीं मिल पाता। इस दृष्टि से कुटीर एवं लघु उद्योग अत्यन्त उपयोगी है तथा हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुकूल है। कृषि व्यवसाय से सम्बद्ध व्यक्ति खाली समय में इस तरह के धन्धों में अपने को लगाकर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

B.M.A. College Baheri Darbhanga (LNMU)
B.A (Hons) Part-II Paper-III Economics

Page No. 1
Date 6-10-2020

प्रेरित तथा स्वायत्त विनियोग

Dr. S.K. Singh
Deptt of Economics

प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन अथवा आय के परिवर्तनों द्वारा निर्धारित होने वाला विनियोग प्रेरित विनियोग (induced investment) होता है। समाज में व्यक्तियों की उपभोग्य आय (disposable income) में वृद्धि होने पर वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि होती है, जिसकी पूर्ति करने के लिए उत्पादन विनियोग को बढ़ाने के लिए प्रेरित होता है। इस प्रकार, प्रेरित विनियोग की मात्रा आय में वृद्धि अथवा कमी के साथ-साथ घटती-बढ़ती रहती है। दूसरे शब्दों में प्रेरित विनियोग आय-सापेक्ष (income elastic) होता है। अल्पकाल में पूँजी-उत्पादन के स्थिर होने के कारण आय तथा प्रेरित विनियोग के मध्य एक सीधा अनुपाती सम्बंध होता है।

स्वायत्त विनियोग (autonomous investment) आय के परिवर्तनों द्वारा प्रभावित नहीं होता है अर्थात आय-निरपेक्ष (income inelastic) होता है। वहाँ पूँजी व्यय (capital expenditure) जो प्रत्यक्ष रूप में समग्र माँग में होने वाले परिवर्तनों द्वारा प्रभावित नहीं होता है, स्वायत्त विनियोग कहलाता है। नवीन प्रक्रियाएँ, आविष्कार, जनसंख्या की वृद्धि, युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियाँ श्रम-आन्दोलन, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, दीर्घकालीन सम्भावनाएँ आदि प्रमुख कारण स्वायत्त विनियोग की मात्रा को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार आय की मात्रा स्थिर रहने पर स्वायत्त विनियोग में परिवर्तन हो सकता है तथा आय में परिवर्तन होने पर भी स्वायत्त विनियोग की मात्रा स्थिर रह सकती है। आर्थिक विकास के उद्देश्य से सड़कों का निर्माण, जन-कल्याण के लिए अस्पतालों का निर्माण, अनुसंधान व विकास पर किया जाने वाला दीर्घकालीन विनियोग स्वायत्त विनियोग के उदाहरण हैं।

Dr S.K Singh
Deptt of Economics

ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धांत
(LIQUIDITY PREFERENCE THEORY OF INTEREST)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे. एम. कीन्स (J.M. Keynes) ने 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक General Theory of Employement Interest and Money में किया। कीन्स के अनुसार ब्याज दर पूर्णतः एक मौद्रिक घटना है। उनके अनुसार ब्याज की दर मुद्रा की पूर्ति एवं मांग की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है।

कीन्स के अनुसार 'ब्याज' वह कीमत है जो कि धन को नकद रूप में रखने की इच्छा तथा प्राप्य नकदी की मात्रा में समानता स्थापित करती है। कीन्स मुद्रा की मांग को तरलता पसन्दगी (Liquidity Preference) के सन्दर्भ में परिभाषित करते हैं। नकद मुद्रा की मांग को तरलता पसन्दगी कहा जाता है। मुद्रा को कई रूपों में रखा जा सकता है किन्तु विभिन्न रूपों में सबसे तरल रूप (liquid form) नकद मुद्रा है क्योंकि नकद मुद्रा को ही जब हम चाहे इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार नकदी (Cash) को कीन्स ने तरलता (liquidity) का नाम दिया।

परम्परागत अर्थशास्त्री यह मानते थे कि मुद्रा केवल विनिमय माध्यम के रूप में कार्य करती है और एक निष्क्रिय वस्तु है। परन्तु कीन्स के अनुसार, मुद्रा विनिमय माध्यम के साथ-साथ मूल्य संचय (Store of Value) का भी कार्य करती है। मुद्रा में तरलता का गुण होने के कारण व्यक्ति मुद्रा का संचय करना चाहते हैं। व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति को मुद्रा उधार देता है तो उसे तरलता का त्याग करना पड़ता है, इसी त्याग के बदले व्यक्ति को जो पुरस्कार दिया जाता है वही ब्याज दर है।

कीन्स के अनुसार, "किसी निश्चित अवधि के लिए तरलता के त्याग का पुरस्कार ही ब्याज है।"

कीन्स के अनुसार मुद्रा की मांग तथा मुद्रा की पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है:

A) मुद्रा की मांग (Demand of Money)
B) मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)

6-10-2020

Dr. S. K. Singh
Deptt of Economics

आर्थिक सम्बन्धों का विनिमय दर पर प्रभाव, (Effects of Economic Relations)

यह सिद्धांत इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देता है, कि दो देशों में कीमतों के स्थिर रहते हुए भी इन दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन होने से विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन हो सकता है। उदाहरणार्थ, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में किसी तीसरे प्रतियोगी देश के प्रवेश करने के परिणामस्वरूप इन दोनों देशों के आयातों तथा निर्यातों पर प्रभाव पड़ने से विदेशी विनिमय दर भी प्रभावित होती है।

रैगनार नर्क्स ने इस सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना की है कि यह केवल मूल्य स्तर में परिवर्तनों को प्रमुख मापकों के रूप में स्वीकार करता है जबकि विदेशी विनिमय की मांग को प्रभावित करने वाले अन्य महत्वपूर्ण तत्वों की अवहेलना करता है। इनके अनुसार यह सिद्धांत मांग को केवल मूल्य का ही फलन मानता है और व्यापार चक्र के कारण समग्र आय और समग्र व्यय में हुए अति परिवर्तनों की अवहेलना करता है, जिसके कारण व्यापार की मात्रा और मूल्य में वस्तुओं के मूल्यों या मूल्यसम्बन्धों के स्थिर रहते हुए भी भारी उतार चढ़ाव होता है।"

निष्कर्ष (Conclusion) - उपरोक्त आलोचनाओं के होते हुए भी क्रय शक्ति समता सिद्धांत विदेशी विनिमय दर के निर्धारण की प्रक्रियाओं को समझने के लिए अव्यावहारिक नहीं है अतः इसका परित्याग नहीं किया जाना चाहिए। अपूर्णताओं तथा त्रुटियों के बावजूद भी इस सिद्धांत का मौद्रिक नीति के दृष्टिकोण से व्यावहारिक महत्व है। यह सिद्धांत विदेशी विनिमय दर को स्थिर रखने के लिए न करने योग्य कार्यों के सम्बन्ध में सरकार देशों को चेतावनी देता है। सन् 1925 में इंगलैंड पौंड-स्टर्लिंग का मूल्य प्रचलित तथा उचित मूल्य से अधिक निर्धारित किया था। इस सिद्धांत के अनुसार पौंड-स्टर्लिंग का ऊँचा विनिमय मूल्य केवल उसी समय स्थिर रह सकता था जबकि इंगलैंड में मूल्य विश्व-मूल्यों की अपेक्षा कम होते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि पौंड-स्टर्लिंग की विदेशी विनिमय दर आवश्यकता से ऊँची रही थी। उस समय सरकार ने बाध्य होकर आकर्षक बैंक दर में वृद्धि करके विदेशी पूँजी को आकर्षित करने का प्रयास किया।